International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 4; April 2017; Page No. 253-257

निरालाः छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ0 मनीषा शुक्ला
अतिथि विद्वान, हिन्दी विभाग, शासकीय संजय गांधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीधी, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
छायावादी काव्य में राष्ट्रीय भावना का तीव्र स्वर मुखरित हुआ है। इस युग में तत्कालीन स्वातंत्र्य–चेतना का पूरा प्रभाव दिखायी देता है। ध्यातव्य है कि हिन्दी साहित्य में छायावादी काव्य का उदय और अस्त उस युग में हुआ था, जब भारत में अंग्रेजों का अखण्ड राज्य था और देश में स्वतंत्रता का आन्दोलन पूरी शक्ति के साथ चल रहा था।[1] उस समय छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत अनेक गीतों का सृजन किया। इतना ही नहीं, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, नवीन आदि कवियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में खुलकर भाग भी लिया। माखन लाल चतुर्वेदी की ''हिमकिरीटिनी'', ''हिमतरंगिनी'' की अधिकांश कविताएँ विलासपुर सेन्ट्रल जेल में लिखी गयी थीं। निराला हिन्दी साहित्य में मनुष्य की कर्मठता, वीरता, धैर्य, आन्तरिक द्वंद्व, उसकी अपार जिजीविषा के चित्रकार हैं। निराला का मानवतावाद हिन्दी साहित्य में उनके अभ्युदयकाल से आरम्भ होता है और अन्तिम दौर तक निरन्तर गहरा होता जाता है। निराला ने साहित्य में जिस मानवतावाद की प्रतिष्ठा की, उसके विकास का इतिहास भारतीय जन–आन्दोलन के उतार–चढ़ाव का इतिहास है। पहले दौर में निराला उस विप्लवी वीर के गीत गाते हैं जिसमें अतिमानव की झलक है।

मूल शब्दः निराला, छायावाद एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।

प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात भारत की स्थिति अत्यन्त दयनीय और संकटग्रस्त थी। युद्ध के परिणामस्वरूप जनता की आर्थिक, सामाजिक दशा खराब हो गयी। इस विश्वयुद्ध के लिए अंग्रेजी सरकार ने भारत के जन–धन की खुलकर लूट की। युद्धोपरान्त देश में बेरोजगारी बढ़ गयी तथा मजदूरों की स्थिति शोचनीय होती गयी। लाखों सैनिक जो पहले युद्धकार्य में लगे हुए थे, अब बेकारी का सामना कर रहे थे। चारों ओर असन्तोष और अराजकता का वातावरण छाया हुआ था।

18 मार्च, 1919 ई. में अंग्रेजी सरकार ने रौलट एक्ट पारित किया। सम्पूर्ण देशवासियों ने इसका प्रतिकार किया और गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन का आह्वाहन किया। इसके विरोध में जलियावाले बाग में एक आमसभा हो रही थी, जिस पर जनरल डायर ने गोली चलवा दी। इस पर कुपित होकर गाँधी जी ने घोषणा कर दी कि सरकार के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन करना आवश्यक है। उनके आह्वाहन पर छात्रों ने स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार किया। वकीलों ने वकालत छोड़ी और देश में असहयोग आन्दोलन को सक्रिय बनाने के लिए जी–जान से जुट गये। कांग्रेस ने परिषदों के चुनाव का बहिष्कार किया। देशभर में सैकड़ों राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाएँ स्थापित हुई। विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी तथा अनेक लोगों ने सरकार को उपाधियाँ वापस कर दियज्ञं [2] नवम्बर 1921 ई. में प्रिंस आफ वेल्स भारत आया जिसका देशभर में विरोध हुआ। इस विरोध को दबाने के लिए अंग्रेजी सरकार ने गोली भी चलायी, जिसमें 53 व्यक्ति मारे गये। गोरखपुर में चौरी–चौरा नामक स्थान में भीषण हत्याकाण्ड को देखते हुए गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया।

नवम्बर 1923 ई. में विधान परिषदों का चुनाव हुआ जिसमें स्वराज्य पार्टी ने भी भाग लिया। इसमें उसे आशातीत सफलता मिली। उसी सभा में निर्दलीय सदस्यों के उम्मीदवार भी थे जिसके नेता मुहम्मद अली जिन्ना थे। भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के जाँच के लिए 1927 ई. में साइमन कमीशन का आगमन हुआ, किन्तु यह जहाँ भी गया, वहीं ''साइमन वापस जाओ'' के नारे लगाये गये।[3] लाहौर में इसका विरोध कर रहे लाला लाजपत राय पर पुलिस ने इतनी लाठी बरसायी कि कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गयी। 1928 ई. में दिल्ली में सम्मेलन हुआ जिसमें भावी संविधान के सिद्धान्तों पर विचार किया गया।

अंग्रेजी सरकार के प्रति भरतीय युवकों का दृष्टिकोण हमेशा से क्रान्तिकारी था। उसी समय बंगाल में युगान्तर पार्टी ने सरकारी खजाने लूटे और अंग्रेज अधिकारियों की हत्या भी की। उसी से प्रेरणा लेकर रामप्रसाद विस्मिल ने गिरोह बनाया और काकोरी नामक स्थान में रेलगाड़ी रोककर सरकारी खजाना लूटा। बाद में अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया, कुछ लोगों को उसके आरोप में फाँसी दी गयी और कुछ लोगों को आजन्म कारावास से दण्डित किया गया। क्रान्तिकारियों में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय विधान सभा में बम फेंका। पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया, बाद में उन्हें फाँसी की सजा मिली। अन्य क्रान्तिकारी नेताओं में चन्द्रशेखर आजाद बचे, जो पुलिस के द्वारा घिर जाने पर अपने ही हाथों शहीद हो गये।

असहयोग आन्दोलन के आठ वर्ष बाद तक राजनीतिक गतिविधियाँ शिथिल रहीं। नेहरू रिपोर्ट और साइमन कमीशन ने एकबार पुनः राजनीतिक हलचल पैदा कर दिया। दिसम्बर 1928 ई. में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें गाँधी जी ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि ब्रिटिश संसद एक वर्ष के भीतर नेहरू संविधान स्वीकार कर लेती है तो ठीक है, अन्यथा कांग्रेस अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ करेगी। सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति के कारण 31 दिसम्बर को ठीक आधीरात के समय रावी नदी के तट पर भारतीय स्वाधीनता का तिरंगा झण्डा फहराया गया। सभी सदस्यों ने नेहरू संविधान रद्द करके स्वाधीनता की माँग करने का निश्चय किया। गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आह्वान किया है। 12 मार्च, सन् 1930 ई. को उन्होंने सावरमती आश्रम से 78 सत्याग्रहियों को लेकर दांडी के लिए कूच किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने हाथ से नमक बनाकर नमक कानून तोड़ा। अन्य स्थानों पर भी इसी प्रकार के कुछ कानून तोड़े गये। अंग्रेजी सरकार ने क्रान्तिकारियों के साथ निर्दयतापूर्वक बदला लिया। अन्त में 1930 ई. में लन्दन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन हुआ। कांग्रेस ने इस सम्मेलन का बहिष्कार

किया जिससे कोई योजना सफल न हो सकी। 7 सितम्बर, 1931 ई. को द्वितीय गोलमेज सम्मेलन हुआ। गाँधी जी ने इसमें कांग्रेस की ओर से प्रतिनिधित्व किया, किन्तु कोई सार्थक निर्णय नहीं हो सका।

सन् 1931 ई. में विलिंगइन वायसराय बनकर भारत आया। उसने आते ही बलपूर्वक कांग्रेस का दमन करना शुरू कर दिया। एक साथ कई अध्यादेश जारी कर दिये गये। गाँधी जी और सरदार पटेल पकड़ लिये गये। जवाहर लाल नेहरू पहले से ही जेल की यातना सह रहे थे। अध्यादेश जारी होने के पहले ही दिन 272 संस्थाएँ गैर–गानूनी घोषित की गयीं।[4] 120000 सत्याग्रहियों को बन्दी बनाकर उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया। अन्त में सितम्बर 1932 ई. में पूना समझौता हो गया और आन्दोलन वापस से लिया गया।

दिसम्बर, 1934 ई. में ब्रिटिश संसद में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया, जिसके तहत भारत शासन अधिनियम पारित हुआ। इसके अनुसार 1858 ई. से चली आ रही भारत परिषद को समाप्त कर दिया गया। उसके स्थान पर भारत मंत्री के कुछ सलाहकारों का प्रावधान किया गया। इसके साथ ही एक संघीय व्यवस्था का प्रावधान हुआ। प्रान्तों को इस संघ में सम्मिलित होना अनिवार्य था, जबकि देशी राज्यों को यह स्वतंत्रता थी कि वे इच्छानुसार सम्मिलित हों या उसका बहिष्कार करें। इस नये संविधान के अनुसार द्वैध शासन की व्यवस्था हुई तथा प्रान्तों का नये सिरे से गठन हुआ। इसके साथ ही उन्हें पूर्ण रूप से स्वायत्तता प्रदान की गयी। 1937 ई. में प्रान्तीय विधायिकाओं का चुनाव हुआ जिसमें मुस्लिम लीग की स्थिति अच्छी न थी। 1937 ई. में ही कांग्रेस–लीग वार्ता असफल होने पर मुसलमानों के नेता मुहम्मद अली जिन्ना को भारी धक्का लगा। उन्होंने भारत के विरुद्ध प्रचार शुरू कर दिया।[5] अप्रत्यक्ष रूप से पाकिस्तान के लिए संघर्ष उसी समय प्रारम्भ हो गया। अक्टूबर, 1937 ई. में लखनऊ में लीग का अधिवेशन हुआ। इस अवसर पर मुहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस की काफी निन्दा की। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि कांग्रेस हिन्दुओं की संख्या है, उसमें मुसलमानों का हित–चिन्तक कोई नहीं है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सुझाव दिया कि संघीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से इन आरोपों की जाँच करा ली जाय, किन्तु जिन्ना ने उनका सुझाव अस्वीकार कर दिया। उन्होंने लीग को मजबूत करने के लिए उसकी अनेक शाखाएँ खोली। सभी मुस्लिम सदस्यों ने मिलकर अपने लिए स्वतंत्र राज्य की मांग की। कालान्तर में उनकी माँग जोर पकड़ती गयी जिससे राष्ट्रीय एकता को बहुत बड़ा धक्का लगा।

इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से अनेक उतार–चढ़ाव दिखायी देते हैं। जहाँ एक ओर जनता में स्वतंत्रता–प्राप्ति की प्रबल उत्कण्ठा विद्यमान थी, वहीं दूसरी ओर आन्तरिक मतभेद का बीज भी प्रस्फुटित हो रहा था। अंग्रेजों के दमन–चक्र के कारण भारतीयों को पग–पग पर कुचला जा रहा था, फिर भी उनमें देशप्रेम की ललक मन्द न पड़ी। समस्त जन–मानस राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को उदिग्न हो रहा था।

छायावाद का उद्भव

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। यह परिवर्तन प्रकृति में ही नहीं, साहित्य, समाज, जीवन, समय, राष्ट्र आदि सभी क्षेत्रों में दिखायी देता है। साहित्य के क्षेत्र में देखा जाय तो वैदिक काल से लेकर आज तक अनेक परिवर्तन दिखायी देते हैं। उसी के फलस्वरूप देववाणी संस्कृत का रूप हिन्दी में परिवर्तित हो गया। हिन्दी में भी आदिकाल से लेकर अद्यावधि अनेक काव्य–धाराएँ उदित और अस्त हुई हैं, किन्तु यहाँ स्पष्ट है कि कोई काव्यधारा एकाएक उदय न होकर पूर्ववर्ती काव्यधारा के सापेक्ष्य में जन्म लेती है और विकसित होती है।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भारत की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। इस युद्ध की विभीषिका में अनेक लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। अनेक नगर ध्वस्त हुए, लाखों की संख्या में लोग मारे गये तथा बेरोजगारी भी बढ़ी।[6] समृद्धिशाली कुछ राष्ट्र भेड़ियों की तरह एक दूसरे पर टूट पड़े। सबकी पूँछ में कोई–न–कोई देश बँधा था।[7] परिणामस्वरूप कुछ हारे, कुछ जीते और कुछ बुरी तरह बरबाद हो गये। इस प्रकार इस विश्वयुद्ध ने सम्पूर्ण विश्वमानस को झकझोर दिया। हिन्दी साहित्य में इसका प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभाव पड़ा है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही हिन्दी के कर्मठ और तपस्वी–साधक हिन्दी के स्वरूप को सजाने–सवारने में लगे हुए थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयत्नों से हिन्दी साहित्य को नयी दिशा मिली। उन्होंने अपनी कवि मण्डली का नेतृत्व करते हुए श्रृंगार और रसिकता का निषेध कर नैतिकता पर विशेष बल दिया। ''नैतिकता के इस अंकुश ने विकसित हिन्दी भाषा और साहित्य के स्वाभाविक सौन्दर्य को एक प्रकार से निष्प्राण बना दिया था। इसी कारण उस युग का साहित्य अपना सारा आकर्षण और सौन्दर्य खोकर अभिधा प्रधान बनकर रह गया।''[8]

महावीर प्रसाद द्विवेदी के समकालीन कुछ ऐसे नवयुवक थे, जो साहित्य में नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता के बन्धन को स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने द्विवेदीयुगीन मान्यताओं को चुनौती दी। इसका कारण यह है कि ''प्रत्येक साहित्यिक चेतना की कुछ–न–कुछ गुत्थियाँ बन जाती हैं जिनके फलस्वरूप एक प्रतिक्रिया का जन्म होता है। द्विवेदीयुगीन काल के दुर्बल पद आगे आने वाली कवियों की प्रतिभा के नये उन्मेष के आधार बने।''[9] इसी कारण द्विवेदी जी के खेमे से बाहर रहने वाले कवियों ने उनकी काव्य–सम्बन्धी मान्यताओं को अस्वीकार करके साहित्य में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। उन्होंने जो युगान्तर उपस्थित किया, उससे हिन्दी साहित्य को नयी दिशा मिली। इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है – ''छायावाद ने हिन्दी काव्यजगत में जो युगान्तर उत्पन्न किया, उसके प्रथम तरंगाभिघात से हमारी साहित्य धारा की प्रगति ही एकदम बदल गयी। छायावादी कविगण अपनी अन्तरात्मा की वास्तविक वेदना लेकर आविर्भूत हुए थे, इसलिए उनकी विषय अनिवार्य थी, आज उनके विरोधियों को भी उनके आगे नतमस्तक होना पड़ा है।''[10]

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप इग्लैण्ड में रोमाण्टिक काव्य का उदय हुआ। अनेक प्रकार के यंत्रों का अविष्कार होने से वहाँ नये–नये कलकारखाने लगाये गये। मशीनों की सहायता से कम समय और कम परिश्रम में अच्छा माल तैयार किया जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप इग्लैण्ड पूँजीवादी देश बन गया। पूँजीपति अपने उत्पादन द्वारा एक ओर कम मजदूरी देकर श्रमिकों का शोषण करते थे और दूसरी ओर कम लागत में अधिक माल का उत्पादन करके बाजार में ऊँची दर पर बेचते थे। वे नहीं चाहते थे कि उनके शोषण के विरुद्ध कोई आवाज उठाये। इसके लिए वे धर्म और नैतिकता का चोंगा पहनकर ईमानदारी का ढोल पीटते और दूसरों से पिटवाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ के नवयुवक कवियों के मन में सम्पूर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई। इसी भावना के फलस्वरूप वहाँ रोमांटिक काव्य का उदय हुआ।

रोमांटिक कवियों ने प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध कर समाज को स्वस्थ, उदात्त तथा सशक्त रूप प्रदान किया। उन्होंने भाषा, शैली, छन्द–विधान, भाव, विचार आदि को नयी दिशा दी। इग्लैण्ड में रोमांण्टिक काव्य का विद्रोह 1750 ई. से लेकर 1825 ई. तक था। छायावादी कवियों पर भी इन रोमाण्टिक कवियों का बहुत

कुछ प्रभाव पड़ा। युद्धकाल में हिन्दी के कवियों ने योरोपीय साहित्य का अध्ययन किया और रोमाण्टिक काल के कालरिज, वडर्सवर्थ, कीट्स, वायरन आदि से ही नहीं, बाद के अंग्रेजी कवियों जैसे स्विनवर्न, ब्राउनिंग, आरनोल्ड, टामस हार्डी, वाल्ट हिवटमैन, ईट्स आदि से भी प्रभाव ग्रहण किया।[11] किन्तु छायावादी कवियों ने इस प्रभाव को कहाँ तक ग्रहण किया, इसके बारे में मतभेद है। कुछ लोग छायावाद को रोमाण्टिक काव्य की अनुकूति मानते हैं, जबकि अन्य विद्वान उसे भारतीय परिस्थितियों की उपज स्वीकार करते हैं। इन परस्पर विरोधी मतों का उल्लेख आवश्यक है। छायावाद को रोमाण्टिक काव्य की अनुभूति मानने वाले विचारकों का मत निम्न हैं।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – ''छायावादी काव्यधारा की प्रेरणा का मूल श्रोत अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों की कविता ही हो सकती है।''[12]

डॉ. नामवर सिंह के अनुसार – ''छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के रोमाण्टिक उत्थान की वह काव्यधारा है जो लगभग ईस्वी सन् 1918 से ''36'' (''उच्छ्वास'' से ''युगान्त'' तक की प्रमुख युगवाणी रही, जिसमें प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि हुए और सामान्य रूप से भावोच्छ्वास–प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना–वैभव की वह ''स्वच्छन्द प्रवृत्ति'' है जो देशकालगत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील गुणों की आशा–आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही है।''[13]

रामचन्द्र शुक्ल ''छायावाद'' को बंगला कविता की देन स्वीकार करते हैं। उन्हीं के मत का समर्थन करते हुए डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है – ''ऐसे ही समय (1913) में रवीन्द्रनाथ की ''गीतांजलि'' को विश्व–सम्मान मिला। बंगला में इस नयी कविता का नाम छायावाद पड़ा था। अतः हिन्दी में यही नाम ग्रहण किया गया, साथ ही ये सभी प्रवृत्तियाँ हिन्दी कविता में आगयीं जो बंगला के छायावाद की थीं।''[14]

किन्तु इसके विपरीत अनेक विद्वान छायावाद को पूर्ववर्ती काव्यधारा की देन मानते हैं। उनका विचार है कि छायावाद के उद्भव के लिए उस समय अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। उसे विदेशी काव्यधारा की अनुकृति कहना उचित नहीं है। ''द्विवेदी–युग के बाद हिन्दी में छायावाद के नाम से जो आन्दोलन उठा, वह मुख्यतः द्विवेदीयुगीन काव्य की कल्पनाहीनता के विरुद्ध विद्रोह था।''[15] उपर्युक्त कथन दिनकर का है। वह इस आन्दोलन के अन्य श्रोतों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं – ''मूलतः यह भारत के उस सांस्कृतिक नवोत्थान का परिणाम था जिसका प्रवर्तन राजाराम मोहन राय ने किया था और जिसके व्याख्याता केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, श्रीमती एनी बेसेन्ट, लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी हुए हैं।''[16] दिनकर ने छायावाद को ''वैयक्तिकता का विस्फोट'' भी कहा है।[17]

महादेवी वर्मा ने लिखा है– ''इसके साथ–साथ रीतिकाल की प्रतिक्रिया भी कुछ कम बेगवती न थी। अतः उस युग की कविता की इतिवृत्तात्कता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं।''[18]

इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है –''छायावाद की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का वक्तव्य – "पुराने ईसाई सन्तों के छायाभास तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ छायावाद कहीं जाने लगी थीं। यह "वाद" क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाये रास्ते का दरवाजा–सा खुल पड़ा है और हिन्दी के कुछ नये कवि (छायावादी कवियों की ओर संकेत है) उधर एक बारगी झुक पड़े। यह अपना बनाया हुआ रास्ता नहीं था।[19] बिल्कुल भ्रामक, निर्मूल और मनगढ़ंत है। बंगला के किसी भी कवि, साहित्य कलाकार या आलोचक ने कभी, कहीं भी, ''छायावाद'' शब्द का उल्लेख नहीं किया। ''छायावाद'' शब्द विशुद्ध हिन्दी का ही है।''[20]

डॉ. कुमार विमल का विचार है कि – ''छायावाद का उद्भव युग की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में हुआ। वह केवल शैली का परिवर्तन, बंगला का प्रभाव या अंग्रेजी के रोमांटिक साहित्य का अनुकरण नहीं था। वह तो अपने देश, साहित्य तथा युग की आन्तरिक प्रेरणाओं से उत्थित हुआ था और किसी वाह्य प्रेरणा का परिणाम नहीं था।''[21]

''छायावाद हिन्दी कविता का स्वाभाविक विकास था। वह न बंगला से आया और न ईसाई सन्तों की छायाभास से। ''छायाभास'' तो हमारे सन्तों की वाणी द्वारा हिन्दी भाषा–भाषियों के जीवन में सदियों से होता रहा है। यह उधार लिया हुआ धन नहीं है।''[22] अस्तु शुक्ल जी का मत ''बिल्कुल भ्रामक, निर्मूल और मनगढ़न्त है।''

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार – ''छायावादी कवि, भावना के क्षेत्र में, एक नयी चुनौती देते हुए आये थे। छायावादी काव्य पर देशी और विदेशी कितने भी प्रभाव रहे हों, परन्तु मुख्यतः उसके श्रोत हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा समाज के तत्कालीन विकास में मिलते हैं।''[23]

प्रो. श्रीपाल सिंह क्षेम की मान्यता है कि– ''छायावाद युग के प्रथम उत्थान के कवियों ने अंग्रेजी तथा बंगला से प्रेरणा भी ग्रहण की, पर उसी रूप में जैसे एक जीवित साहित्य दूसरे जीवित साहित्य से प्रेरणा लेता है। छायावादी काव्य अपनी परम्परा से विच्छिन्न अथवा विदेशी काव्य नहीं। परिवर्तित परिस्थितियों में अपनी ही सामंजस्यशील आर्य साहित्य–साधना का एक युगानुकूल मोड़ है।''[24]

डॉ. आशा किशोर ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त करते हुए लिखा है– ''छायावाद अपने पूरे अतीत काव्य का सांस्कृतिक सार है। उसका विकास समसामयिक परिस्थितियों के अनुकूल हुआ। उसमें केवल द्विवेदी युगीन प्रतिक्रिया नहीं, अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व भी है। नवीन उद्भावनाओं और प्रयोग की दृष्टि से आधुनिक काल में हिन्दी कविता की सर्वाधिक उपलब्धि इसी काल में हुई है।''[25]

डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा ने उसे विद्रोही काव्य के रूप में स्वीकार करते हुए द्विवेदी युगीन काव्यधारा का विकास कहा है। इसके साथ वे इस पर पाश्चात्य प्रभावों को स्वीकार करते हैं। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है– ''छायावाद का जन्म ही विद्रोह में हुआ है।[26] यह विद्रोह भावनाओं और विचारों में भी है और शैली एवं कला में भी।''[27] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी छायावाद को विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम मानते हैं। उनका विचार है कि जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया था, उनके इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।[28]

अज्ञेय जी छायावाद को पश्चिम से किंचित प्रभावित व्यक्तिपरक विद्रोही दृष्टि का परिणाम मानते हैं, जिसने भाव, भाषा, छन्द, शिल्प, रस, अलंकार, प्रतीक आदि सभी को नया संस्कार दिया।[29] आचार्य बाजपेयी जी ने भी इसी ओर संकेत किया है।– ''जिस युग की चर्चा हम कर रहे हैं, वह मुख्यतः साहित्यिक और सामाजिक परम्पराओं के विरुद्ध विद्रोह का युग था। गाँधी जी द्वारा जगायी राष्ट्रीय चेतना का वेग भी इन अनुभूतियों के मूल में है, क्योंकि सारा समाज एक अनिश्चित सी स्थिति में पड़ा था। कवियों की वाणी में संगीत है, उल्लास है, विद्रोह है और नव–निर्माण की उत्कट अभिलाषा है, परन्तु जागृति की यह सारी चेतना व्यक्तिनिष्ठ और आदर्शोन्मुख है।''[30]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ''छायावाद'' विदेशी कम, स्वदेशी[31] अधिक रहा है। डॉ. आशाकिशोर ने छायावाद के उद्भव पर जो मत व्यक्त किया है, सम्भवतः वह समीचीन, संगतपूर्ण और सर्वमान्य कहा जा सकता है। उन्होंने विस्तार से विवेचन करते हुए लिखा है– ''मेरी दृष्टि में छायावाद की पृष्ठभूमि इसी देश की समसामयिक परिस्थितियों एवं उन संस्कारों का प्रभाव है, जो अतीत की

सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टियों से विद्ध थे। केवल रोमांटिक कविता अथवा रवीन्द्रनाथ का जूठन कहकर छायावाद का अपमान नहीं किया जा सकता। हर नयी चेतना को सँवरने में बहुतेरी विचारधाराओं का हाथ होता है, हर नयी मान्यता के पीछे समकालीनता का प्रभाव होता है। अतः छायावादी दृष्टि को माँजने में यदि उपर्युक्त विदेशी और स्वदेशी मान्यताओं का प्रभाव रहा, तो कोई आश्चर्य नहीं। उधार ली हुई कोरी नकल की वस्तुएँ बहुत दिनों तक महत्व नहीं पातीं। छायावाद की ''शव–परीक्षा'' और उसके ''पतन'' की घोषणा करने वाले आलोचक (डॉ. देवराज) भी यह समझते हैं कि आधुनिक हिन्दी कविता का सुन्दरतम स्वरूप इसी काव्यधारा के अन्तर्गत सुरक्षित है।''[32]

हिन्दी साहित्य की छायावादी काव्य धारा स्वदेशी तकनीक की उपज है। उसके पूर्व अन्य काव्यधाराओं के उदय में भी स्वदेशी परिस्थितियाँ और गतिविधियाँ विद्यमान थीं। द्विवेदी–युग के बाद किसी–न–किसी काव्यधारा का उदय होना अवश्यम्भावी था, क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। अतः छायावाद को रोमांटिक काव्य की अनुकृति या बंगला कविता का जूठन कहकर उसकी अवमानना करना उचित नहीं है। इतना अवश्य है कि रोमांटिक काव्य ने उसमें निखार लाया, किन्तु जन्म के लिए वह उत्तरदायी नहीं है।

छायावाद के उद्भव की तरह इसके काल–निर्धारण के बारे में भी विभिन्न मत हैं। हिन्दी में छायावादी काव्य–प्रवृत्ति बहुत पहले से मिलने लगी थी। मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक में छायावादी स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति तो मिलती ही है, वह भारतेन्दु और उनसे पूर्व घनानन्द में भी लक्षित की जा सकती है।[33] रामधारी सिंह ''दिनकर'' ने इस सम्बन्ध में एक बड़ी रुचिकर बात कही है कि हिन्दी कविता की भाषा में जो परिवर्तन हुआ, उसी के कारण छायावादी काव्य हिन्दी में एकदम नया और अपरिचित–सा लगने लगा। दूसरी बात जो छायावादी काव्य को पूर्ववर्ती काव्य से अलग करती है, उसका प्रधान कारण पाश्चात्य प्रभाव है। ''छायावाद यदि पूर्व के युग से छिन्न मालूम होता है तो इसका एक बड़ा कारण यह है कि भारतेन्दु के बाद हिन्दी कविता की भाषा बदल गयी। यदि घनआनन्द ने खड़ी बोली में लिखा होता तो सरलता से वे छायावाद के पूर्व पुरुष मान लिये गये होते। किन्तु, यह हुआ नहीं। कुछ तो कविता की भाषा बदल जाने के कारण और कुछ पाश्चात्य प्रभावों के प्रायः सहसा पूंजीभूत हो उठने के कारण छायावाद काल की कविता ने ऐसा रूप ले लिया, जो उसे पूर्व युगों से भिन्न कर देता है।''[34]

साहित्य में किसी भी काव्यधारा का उदय या अस्त रंगमंच के पट–परिवर्तन की तरह नहीं होता है। नवीन काव्यधारा पूर्ववर्ती काव्यधारा में पहले भ्रूण रूप में पोषित होती है, उसके बाद उसका अभ्युदय होता है। ''जिस प्रकार दिवस अवसान के समय रात्रि के आगमन का क्षण वैज्ञानिक विधि से नहीं आँका जा सकता, जिस प्रकार संगम में गंगा, यमुना और सरस्वती के जल–विभाजन की कोई भौगोलिक रेखा नहीं खींची जा सकती, ठीक उसी प्रकार साहित्य की विभिन्न धाराओं के समापन और प्रारम्भ की कोई निश्चित तिथि अंकित करना असम्भव है। घटनाओं और तिथियों पर विश्वास करना इतिहास का कार्य है। मूलतः वह मानवीय प्रयास, जिसमें घटनाओं और तिथियों का प्रामाणिक आलेख प्रस्तुत किया जाता है, ही इतिहास है। साहित्य किसी विषय या वस्तु की सीमा न होकर उसका प्राण है।''[35]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद का आरम्भ सम्वत् 1975 (1918 ई.) से माना है। 1918 ई. के आसपास छायावादी रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थीं। निराला ने 1916 ई. में ''जुही की कली'' लिखी, जो द्विवेदीयुगीन काव्यधारा से मेल न खाने के कारण ''सरस्वती'' के द्वार पर से जाकर लौट आयी। इसी के आसपास ''पल्लव'' की अनेक कविताएँ रची गयी थीं। इससे यह जाहिर होता है कि इस काल में एक नया मोड़ लक्षित होने लगा था, जो पुरानी पद्धति का परित्याग करके नयी पद्धति के निर्माण की सूचना दे रहा था। डॉ. नगेन्द्र ने भी छायावाद का कालक्रम 1918 ई. से 1938 ई. तक स्वीकार करते हुए दो–चार साल आगे–पीछे की रचनाओं का समाहार उसी में किया है– ''वर्ष विशेष से किसी साहित्यिक युग का आरम्भ मानने के बारे में थोड़ा–बहुत मतभेद हो सकता है। इसलिए जब छायावाद का आरम्भ सन् 1918 और अन्त 1938 में माना जाता है तो इन दोनों सीमाओं का आधार इन वर्षों की ओर इनके आसपास दो–चार साल पहले या दो–चार साल बाद की रचनाएँ होती हैं और इसलिए दोनों छोरों को दो–चार साल इधर या उधर सरकाया जा सकता है।''[36]

सन् 1920 ई. में मुकुटधर पाण्डेय ने जबलपुर की ''श्री शारदा'' पत्रिका में ''हिन्दी में छायावाद'' शीर्षक नामक लेख लिखा। उसके बाद छायावादी कविता की हिन्दी साहित्य में धूम मच गयी। किन्तु इसके पूर्व भी छायावादी कविताओं का क्रमबद्ध इतिहास है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का मत[37] है कि 1913 ई. से 1929 ई. तक का समय स्वच्छन्दतावादी काव्य–प्रवृत्ति से अधिक गाढ़ा होकर छायावाद की विशिष्ट काव्य शैली के रूप में परिवर्तित हो गया। कुछ लोगों ने 1909 ई. से 1920 ई. तक के समय को छायावाद का प्रयोग काल माना है।[38] इस काल में कविगण विषय और भाषा–शैली के नये–नये प्रयोग करते हुए उसके भावी विकास की भूमिका तैयार कर रहे थे।[39] इसी कारण 1920 ई.तक की छायावादी रचनाओं में कोई निखार नहीं दिखायी देता है।

अतः स्पष्ट है कि छायावादी काव्यधारा का अभ्युदय स्वदेशी परिस्थितियों के सापेक्ष्य में नयी अभिव्यक्ति के साथ हुआ। उस पर रोमांटिक साहित्य का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह साहित्य भाव, भाषा, शिल्प आदि की दृष्टि से सर्वथा नवीन और विद्रोही स्वर का परिणाम था। प्रारम्भ में आलोचकों को यह अस्पष्ट–सा लगा, किन्तु बाद में सर्वाधिक रहस्यमय और चर्चा का विषय बन गया।

निष्कर्ष

छायावादी कविता उस काल में रची गयी जिस समय भारतीय जीवन में एक गहरी निराशा व्याप्त थी। यही कारण था कि सन् 1920 के पूर्व की साहित्यिक भूमि छायावाद के जन्म और विश्वास के लिये उर्वरा सिद्ध हुई। सामाजिक वैषम्य और शोषित मानवता छायावादी रचनाओं के सृजन के लिये पृष्ठभूमि बनी। फलतः राष्ट्रीय चेतना की प्रवृत्ति मुखरित होने लगी। रचनाकारों के ओज, बौद्धिकता, मनोदशा एवं ब्रह्मचर्य की दीप्ति से भीगी वाणी ने स्वतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े देश की तंद्रा तोड़ दी। एक बार देश अपने वेणियों को तोड़ने के लिये कसमसा उठा।

छायावाद का जो आन्दोलन आया उसमें दो प्रकार के रचनाकार हमारे सामने उभर कर आये। प्रथम वे जो मानव व प्रकृति के मनोवैज्ञानिक मनोमय भावों के अनुरूप रचनाओं का सृजन करते थे और दूसरे वे जो आत्मा और परमात्मा के विरह सम्बन्धों का चित्रण करते थे। तद्युगीन रचनाओं में मानव प्रकृति के सुख दुःखात्मक, कवि जिज्ञासा, कौतूहल, परिचय, विरह वेदना, तड़पन, आत्मलीनता आदि भावों से दीप्त समाज मनोवैज्ञानिक रचनायें लिखी जाती थीं।

सन्दर्भ

1. छायावाद से नयी कविता, पृष्ठ 8, डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा.
2. भारत का इतिहास, डॉ. सत्यनारायण दुबे, 258.
3. आधुनिक भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, वी. एन. लुणिया, 431.
4. कांग्रेस का इतिहास, पट्टाभिसीतारमैया, 468, 1.
5. भारत का इतिहास, डॉ. सत्यनारायण दुब, 332.

6. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृष्ठ 144, डॉ. आशा किशोर.
7. हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ 468, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी.
8. छायावाद से नयी कविता, पृष्ठ 30–31, डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा.
9. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृष्ठ 146, डॉ. आशा किशोर.
10. देखा परखा, 1957 ई0., पृष्ठ 20, इलाचन्द्र जोशी.
11. छायावाद युग, पृष्ठ 18, डॉ. शम्भूनाथ सिंह.
12. "अवन्तिका", काव्यालोचनांक, पृष्ठ 212, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी.
13. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 17, डॉ. नामवर सिंह.
14. छायावाद युग, पृष्ठ 18, डॉ. शम्भुनाथ सिंह.
15. काव्य की भूमिका, पृष्ठ 29, दिनकर.
16. चक्रवाल, पृष्ठ 16, दिनकर.
17. मिट्‌टी की ओर, पृष्ठ 12, दिनकर.
18. आधुनिक कवि की भूमिका, पृष्ठ 9, महादेवी वर्मा.
19. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 566, शुक्ल जी.
20. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृष्ठ 31, डॉ. आशाकिशोर.
21. छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ 23, डॉ. कुमार विमल.
22. "अवन्तिका", काव्यालोचन, जनवरी 1953, पृष्ठ 108.
23. राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध, भूमिका, नन्ददुलारे बाजपेयी.
24. छायावाद की काव्य–साधना, प्रो. क्षेम.
25. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृष्ठ 38, डॉ. आशा किशोर.
26. छायावादी काव्य, पृष्ठ 9, डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा.
27. सुमित्रानन्दन, पृष्ठ 7, डॉ. नगेन्द्र.
28. हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 461–462, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी.
29. पुष्करिणी, पृष्ठ 26–27, अज्ञेय.
30. नया साहित्य, नये प्रश्न, पृष्ठ 148, नन्द दुलारे बाजपेयी.
31. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ 15, नन्द दुलारे बाजपेयी.
32. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास, पृष्ठ 37, डॉ. आशाकिशोर.
33. द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 263–264, डॉ. पूनमचन्द्र तिवारी.
34. छायावादी काव्य, पृष्ठ 7–8, डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा.
35. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 24, डॉ. कमला प्रसाद.
36. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 536–537, डॉ. नगेन्द्र.
37. "अवन्तिका", काव्यालोचन विशेषांक, पृष्ठ 191, नन्ददुलारे बाजपेयी.
38. द्विवेदीयुगीन काव्य, पृष्ठ 302, डॉ. पूनमचन्द्र तिवारी.
39. देखा परखा, पृष्ठ 22, इलाचन्द जोशी.